समन्वितम्। आवर्ततेऽन्त्य योऽयत्वादन्त्यानुप्रास उगाते॥ (राग रत्नाकर 138)

क्षुद्रगीत के प्रचारित भेद

शास्त्रकारों ने क्षुद्रगीत के चार भेद बताए हैं-क्षुद्रगीतभेद कहिं चित्रपदा आर। चित्रकला ध्रुवदा पांचाली प्रचार॥ इसका अर्थ है-

1. चित्रपदा,

2. चित्रकला,

3. ध्रुवपदा और

4. पांचाली।

इनमें से प्रथम चित्रपदा के लिए मत यह है कि उसमें केवल पद वैचित्र्य है। यह निश्चित है कि वहां धातु वैचित्र्य नहीं होता है। मृदु अनुप्रास प्रासादि गुण में युक्त पद वैचित्र्य से इसका अर्थ लगाया जाता है। इसका आशय है कि केवल पदमात्र से जहां विचित्रता दिखाई देती हों, धातु आदि में विचित्रता नहीं होती, उसको चित्रपदा कहा जाता है- केवलं पदमात्रेण वैचित्र्यं यत्र दृश्यते। न धात्वादौ विचित्रत्वं ज्ञेया चित्रपदेति सा॥ (उपर्युक्त 141) इसका उदाहरण राग गुण्डकिरी से जगन्नाथ वगभ नाटक में दिया गया है-कलयति नयनं दिशि दिशि वलितं, पंकजमिव मृदुमारुत चलितमिति। इस पदावली का आशय है कि हर एक दिशा में वे जगन्नाथ आंखों को घूमाकर आकलन करते हैं, जैसे कि मन्द चलित वायु से कमल हिल रहे हों।

चित्रपदा के इस विमर्श में ही गोविंददास की यह रचना दृष्टव्य है जो राग सारंग में निबद्ध है-

कुन्दल कनक कलित कर कंकण कालिंदी कूलविहारी।
कुचित कच केशर कुसुमाकुल कामिनी करधारी॥
जय जय जगजीवन यदुवीर।
जलधर जिति सुजोति यछुमोहित युवती यूथ अरिवर॥ ध्रुव॥
पदुमिनी पाणि परशे पुलकायित परिजन प्रेम पसारि।
पहिरण पीत पतनि पतितांचल पदपंकज परचारि।।
रमणीरमण रतन रुचिरानन रातिरंजित रणरास।
रसनारोचन रसिकरसायन रचयति गोविंददास॥

इस पूरे ही क्षुद्रगीत में अन्त्यानुप्रास की छटा बहुत लालित्य लिए है। एक-एक वर्ण से बनने वाले शब्दों का चुनाव और उनका बाहुल्यता से प्रयोग बहुत मनोरम लगता है। स्वाभाविक श्लेष और उपमा सहित अर्थालंकारों की रचना भी रोचकता लिए हैं। इसमें ब्रजभूमि में ब्रजवगभ के विहार का मनोरम प्रसंग है।

द्वितीय चित्रकला भेद के लिए यह विशेषताएं आई हैं- उद्ग्राह आभोगे मात्रासम निरूपय। ध्रुव मात्रा न्यून होइले चित्रकला कय।। इहाते त्रिपाद चतुष्पादादि प्रचार। अष्टपाद पर्यन्त ए सीमा सुनिर्धार॥ इसका आशय है कि उद्ग्राह और आभोग में मात्रा समान होने, ध्रुव में मात्रा कम होने पर चित्रकला नामक क्षुद्रगीत होता है। इसमें त्रिपाद चतुष्पादादि का प्रचार होता है। इसकी सीमा अष्टपाद तक बताई गई है। यह भी कहा गया है- उद्ग्राहाभोगयोर्मात्रा समा न्यूना ध्रुवे यदि। त्र्याद्याष्टावधिपादाढ्या ज्ञेया चित्रकला हि सा॥ इसका आशय है कि उद्ग्राह और आभोग में सम मात्रा हो, ध्रुव में अल्प हो, तीन से लेकर आठ चरण तक रचना हो तो वह चित्रकला संज्ञक है।

इसकी पुष्टि गीत गोविन्द के एक ध्रुव के उदाहरण से होती है जिसमें गुर्जरी राग में आया है- मंद पवन संचारित हो रहा है और हरि अभिसरण कर रहे हैं। हे सखी, घर में इससे अधिक क्या है, हे मानिनी, माधव के विषय में मान मत करो- हरिरभिसरति वहति मृदुपवने, किमपरमधिक समं सखि भवने। माधवे सा कुरु मानिनि मानमये॥

मयूर राग में निबद्ध गोविन्ददास का एक पद इस प्रसंग में दृष्टव्य है-

मुखरित मुरली मिलित मुखमोदने मरकत मुकुर मैलान।
मानिनि मान सखन मुचकारति मुनि मानस मूरुछाल॥